पं. दीनदयाल उपाध्याय जी एवं एकात्म मानववाद

गीता रस्तोगी 'गीतांजलि'

राष्ट्र का अस्तित्व दीनदयाल उपाध्यायजी के जीवन का ध्येयभूत भाव है। जब एक मानव समुदाय के समक्ष एक मिशन, विचार या आदर्श रहता है और वह किसी भूमि विशेष को मातृ भाव से देखता है तो वह राष्ट्र कहलाता है। इनमें से एक का भी अभाव रहा तो राष्ट्र नहीं बनेगा।[1] राष्ट्र एक ऐसी चीज है जो कि बहुत-सी चीजों का सम्मिश्रण है। यदि हम मनश्चक्षुओं को बंद करके देखें और इसका कुछ विश्लेषण करें तो बहुत-सी बातें हमें दिखाई देंगी। जैसे कि हमारा सारा देश राष्ट्र के अंतर्गत आता है। इस देश में रहने वाले जितने भी मनुष्य हैं चाहे वे आज के हो या युगों-युगों से जो पीढ़ी दर पीढ़ियां रहने आए हैं, वे सब राष्ट्र के अंतर्गत आते हैं। राष्ट्र की भावना में हमारे पुरुषों की भावनाओं रहता है। जब हम राष्ट्र शब्द का ध्यान करते हैं तो हमारा संपूर्ण इतिहास हमारे सामने आ जाता है। हमारी संस्कृति की जो विशेषताएं हैं वे भी सामने आ जाती हैं। हमने जीवन में जो गौरव प्राप्त किया है, वह गौरव भी एक बार हमारी आंखों के सामने से निकल जाता है।

राष्ट्र का मूर्त स्वरूप

पंडित दीनदयालजी ने सर्वप्रथम राष्ट्र के अमूर्त स्वरूप को सही तरीके से जानने पर बल दिया है। उनके अनुसार जब तक यह अधिकाधिक स्पष्टता से हमारी आंखों के सामने मूर्त रूप में विराजमान नहीं होगा तब तक हम सच्चा देशप्रेम और सच्ची राष्ट्रभक्ति नहीं कर सकते। हमारी भाषा, हमारा वेष, हमारे सांस्कृतिक जीवन की विशेषताएं, हमारा त्याग, हमारा दृष्टिकोण, हमारे आज की रहने वाली संतति के जीवन की संपूर्ण आकांक्षाएं एवं उसकी सम्पूर्ण प्रवृत्तियां तथा मनोभावनाएं, ये सब बातें राष्ट्र के अंतर्गत आती हैं। जब यह सारी कल्पना एकाएक किसी व्यक्ति के सामने आती है, तो वह इसे समझ नहीं पाता। परंतु जो विचारी होते हैं और जो राष्ट्र की सारी भावनाओं से वैज्ञानिक रीति से परिचित होते हैं वे यह सब समझ जाते हैं कि अंतरात्मा में राष्ट्र के प्रति जो भक्ति भावना रहती है वह अकसर छिप जाती है। उसकी केवल एक अमूर्त कल्पना मन में रहती है।[2] इसी अमूर्त कल्पना को मूर्त स्वरूप देने के लिए प्रत्येक राष्ट्र में एक साधना की जानी चाहिए।

किसी भी राष्ट्र का ध्वज उसकी पहचान होती है। अपने ध्वज के सम्मान की रक्षा ऐसे ही की जानी चाहिए जैसे व्यक्ति अपने धर्म की करता है। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' की भांति 'ध्वजो रक्षति रक्षितः' भी कहना आवश्यक है। हम सब यह प्रण लें, जिस प्रकार हमारे पूर्वजों ने ध्वज की रक्षा के लिए अपने सर्व प्रकार के सुखों को तिलांजलि दे दी, अनेक कष्ट सहन किए पर अपने स्वाभिमान को नहीं बेचा; धर्म को तिलांजलि नहीं दी, अपनी आत्मा को नहीं बेचा। इस प्रकार कष्ट सहन करके, सुख छोड़कर और आकांक्षाओं का त्याग करते हुए हम केवल एक महान आकांक्षा अपने सामने रखें और वह आकांक्षा ही इस ध्वज को उच्च गुरु-स्थान प्राप्त कर देगी। यह विश्व का भी गुरु बन कर रहेगा।[3]

भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति

भगवान की भक्ति को कोरे अंधविश्वास की भांति करने की अपेक्षा उसके मर्म-तत्व को जानकर करना चाहिए। पंडित उपाध्याय ने ज्ञान, कर्म व भक्ति के क्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण को आधार माना और उनके द्वारा प्रतिष्ठित मूल्यों को आचरण में उतारने की शिक्षा दी। धर्म का वास्तविक अर्थ संप्रदायों में बंट जाना नहीं वरन कर्त्तव्य का

समुचित निर्वाह है। अवतारों की भूमि पर नैतिक मूल्यों का पतन एक दु:खद आश्चर्य है। कोई भी राष्ट्र किसी को अपना भगवान या आदर्श क्यों मान लेता है इसकी भी स्पष्ट व्याख्या आपने अपने आलेखों में की है।

जिस व्यक्ति में अपनी आत्मा का प्रतिबिंब दिखाई देता हो उसी की पूजा होती है जो मानवता के कल्याण की भावना लेकर चलता है उसी के प्रति श्रद्धा और प्रेम भी पैदा होता है। राष्ट्र में उसी का मान होता है जो अपना जीवन राष्ट्र के हित में लगा देता हो। भगवान श्रीकृष्ण उन अवतारी पुरुषों में अग्रगण्य हैं जिन्होंने राष्ट्र के हृदय पर अधिकार करके उसको अपना बना लिया और इसीलिए हमने युगों-युगों से उनकी पूजा की है। आज भी हम भगवान श्री कृष्ण की पूजा करते हैं। उनके जन्मोत्सव को धूमधाम से मनाते हैं व्रत उपवास रखते हैं। कृष्ण नाम की रट लगाए अनेक लोक कथा कीर्तन में झूम उठे हैं इतना होते हुए भी राष्ट्र क्यों पाटन के मार्ग पर अग्रसर हो रहा है? इसका केवल एक ही कारण है। हमने तत्त्वों को छोड़कर उसके बाह्य रूप को पकड़ रखा है। भगवान के नाम का स्मरण करते हैं उनका कीर्तन करते हैं उनके अनेक गुणों की व्याख्या करते हैं किंतु उनके जीवन के रहस्य को समझ कर उस पर आचरण नहीं करते।[4]

ये अवतारी पुरुष राष्ट्र का केंद्र व उसका हृदय है तथा उनके जीवन का रहस्य ही राष्ट्र के उन्नति का रहस्य है। राष्ट्र जीवन की एकत्मिकता उनके जीवन में स्पष्टतया दृष्टिगत होती है। राष्ट्रशक्ति को कल्याणमय स्वरूप देने के लिए एक ही धारा में प्रवाहित करने के लिए मर्यादाओं का निर्माण होता है। यदि आवश्यक हो तो इनमें परिवर्तन भी किया जा सकता है। उपाध्याय जी के अनुसार भगवान श्री कृष्ण ने जिस प्रकार पुरानी मर्यादाओं को आवश्यकतानुसार तोड़कर नवीन मर्यादाओं की स्थापना की, इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण इन्द्र की पूजा न करके गोवर्धन-पूजा करना है। गोवर्धन धारण श्री कृष्ण के संगठन-कौशल्य का अनूठा उदाहरण है, जो अनुकरणीय है।

एक बार राष्ट्र का ध्येय निश्चित कर लेने पर सर्वस्व उस ध्येय की पूर्ति में लगाना आवश्यक हो जाता है, फिर उसके लिए पग-पग पर नीति-अनीति, सत्य-असत्य का विचार करने की आवश्यकता नहीं रहती है। जो ध्येयपूर्ति में सहायक हो, वही नीति है। जो ध्येय को सत्य सृष्टि में परिणत कर सके, वही सत्य है। धर्म की विवेचना करने वाले भगवान कृष्ण के जीवन में यह सिद्धांत स्पष्ट दिखाई देता है।[5]

भारतीय जनमानस में श्री कृष्ण के जीवन के विषय में अनेक भ्रांतियां भी हैं। उपाध्याय जी ने इन भ्रांतियों का उन्मूलन करते हुए कृष्ण को एकपत्नीव्रत समर्थक बताया है और उनके बहुविवाह के कारण को भी स्पष्ट किया है। श्रीकृष्ण के सोलह हजार कुमारी कन्याओं से विवाह करने के पीछे निहित कारण उनकी विलासी प्रवृत्ति नहीं वरन रक्षक धर्म का निर्वाह करना था। वे कन्याएं नरकासुर की कैद में थीं, जहां से मुक्त करने के लिए व समाज को व्यभिचार तथा दुर्व्यवस्था से बचाने के लिए स्वयं उनका करग्रहण किया। यदि हमने उनके जीवन के इस सूत्र को पकड़ लिया तो उनके जीवन की तथा उनके ही समान अन्य अवतारी महापुरुषों के जीवन की अनेक गुत्थियों को सरलता से सुलझा सकेंगे। जिस विभूति ने राष्ट्र के हित के सम्मुख अपने व्यक्तिगत हित की किंचित भी चिंता न की हो, उसी के व्यक्तित्व की छाप राष्ट्र पर इतनी गहरी पड़ी है कि मिटाए नहीं मिट सकती। आज हम अवतारी महापुरुषों की केवल सिद्धि देखते हैं, उनकी साधना के स्वरूप को पहचानने का प्रयत्न नहीं करते। सिद्धि की पूजा में सफलता का रहस्य नहीं है, सफलता का राजमार्ग तो साधना का आचरण है।[6] अपने योग की साधना में संपूर्ण राष्ट्र का सहयोग प्राप्त करने के निमित्त ही भगवान श्रीकृष्ण ने कहा था-

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी माँ नमस्कुरु |
मामेवैश्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ||

(श्रीमद्भगवद्गीता, 18/65)

[अर्थ-मेरे ऊपर ही मनन करने वाले, मेरे भक्त, मेरे लिए यज्ञ करने वाले जनों, मुझे ही नमस्कार करो। मैं सत्य रूप से प्रतिज्ञा करता हूं कि इस प्रकार तुम मुझे ही प्राप्त होगे, तुम मुझे प्रिय हो।]

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकम् शरणं व्रज|
अहम् त्वाम् सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ||

(श्रीमद्भगवद्गीता,18/66)

[अर्थ- सब धर्म को छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त करूंगा, शोक मत करो।][7]

श्री कृष्ण की शरण में जाने का अर्थ था, राष्ट्र की शरण में जाना। कृष्ण के लिए कार्य करने का अर्थ, राष्ट्र के लिए कार्य करना क्योंकि उस समय श्रीकृष्ण राष्ट्र की आशा-आकांक्षाओं के प्रतीक थे, उसके प्रयत्नों के प्रतिनिधि थे।[8]

चिति

सारी दुनिया एक चेतना शक्ति से बनी है। सब जीव-जंतु, पेड़-पौधे, इन्सान भी इस चेतन शक्ति का अंश है। इसीलिए उन सब का सम्मान करना चाहिए। व्यक्ति के चेतन की अधिकांश समय स्थाई स्थिति व राष्ट्र के विशाल जन समूह के चेतन की स्थिति ही चिति है। दीनदयालजी के एकात्मक मानववाद व देशभक्ति में चिति का विशेष महत्त्व बताया गया है। जिस प्रकार ब्रिटिश शासन की गुलामी से स्वाधीनता संग्राम के समय राष्ट्र की एक चिति थी। उस समय समस्त जनसमुदाय की केवल एक भावना व एक ही विचार था-किसी भी विधि से देश को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त करना। देश स्वतंत्र हुआ और वह चिति कहीं खो गई। उससे पहले ब्रिटिश से आजादी एक स्पष्ट उद्देश्य था। देश आजाद होने पर सामान्य जनमानस के समक्ष एक स्पष्ट उद्देश्य का अभाव हो गया कि अब उन्हें किसके विरोध में या कौन-सी दिशा में प्रमुखता से कार्य करना है ताकि निजी उन्नति के साथ-साथ देशसेवा व राष्ट्रभक्ति भी हो सके।

व्यक्ति की आत्मा के समान ही राष्ट्र की भी आत्मा होती है इसी के परिणाम स्वरुप राष्ट्र में एकात्मता प्रस्तुत होती है। राष्ट्र की इस आत्मा को हमारे शास्त्रकारों ने 'चिति' कहा है। भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की विभिन्न चिति होती है। चिति की भिन्नता के कारण ही एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के शासन में होने पर अपने को परतंत्र समझता है। स्वतंत्र राष्ट्र में भी सरकार होती है। वहां भी शासन संबंधी नियम होते हैं। राष्ट्र की आपत्ति और संपत्ति के काल भी रहते हैं किंतु उस स्थिति में कोई भी देशभक्त दुःख नहीं मानता है, सहर्ष आपत्तियां झेलता है, निर्धनता का जीवन भी सुख से बिताता है।

चिति ही राष्ट्र का द्योतक है। यही चिति जनसमूह के देश-विशेष पर रहने के कारण उसकी संस्कृति, साहित्य और धर्म में व्यक्त होती है। चिति की एकता की समान परंपरा, इतिहास और सभ्यता का निर्माण करती है। अतः किसी भी राष्ट्र की एकता के लिए मूल कारण संस्कृति, सभ्यता, धर्म, भाषा आदि की एकता नहीं किंतु ये

तो मूल कारण एक चितिि के व्यक्त परिणाम हैं। अतः ऊपर से प्रयत्न करके भी भिन्न-भिन्न चिति के लोगों में भाषा, धर्म, सभ्यता आदि की एकता निर्माण करने पर भी राष्ट्रीय एकता नहीं हो सकती, ऐसा उपाध्यायजी का मत है। शरीर के अंगों के केवल एकत्रीकरण मात्र से जीवन नहीं होता है किंतु आत्मा की स्थिति ही जीवन और चैतन्य की दात्री होती है। व्यक्ति की आत्मा की एकता ही उसके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं तथा चरित्र की एकता में व्यक्त होती है। शरीर और अंग का एक दूसरे से संबंध, प्रत्येक अंग का शरीर के लिए काम करना और परिणामस्वरुप संपूर्ण शरीर के साथ-साथ प्रत्येक अंग का भी पालन-पोषण और पुष्ट होते जाना, यह समष्टि जीवन का भाव भी आत्मा की उपस्थिति के कारण ही है, कोई स्वार्थ भावना इसके पीछे नहीं है। बस राष्ट्र की संपूर्ण एकता, उसका समष्टि जीवन राष्ट्र की आत्मा चिति के परिणामस्वरूप ही होता है।[9]

चिति के प्रकाश से ही राष्ट्र का अभ्युदय होता है और चिति के विनाश से ही राष्ट्र का अध: पात होता है। परतंत्र अवस्था में चिति आक्रांत होती है। जनमानस में उसका प्रकाश अत्यन्त क्षीण हो जाता है। केवल कुछ शुद्ध, सात्त्विक वृत्ति के लोगों में ही उसका आविर्भाव होता है। चिति के इस प्रकाश को उज्ज्वलतर बनाने का कार्य ही देशभक्ति का मुख्य कार्य होता है। इसी के परिणामस्वरुप देश के बंधन कटते हैं। उसके पश्चात इसका प्रकाश बढ़ते-बढ़ते राष्ट्र जीवन को पुष्ट बनाता है, उसको चिरंतन करने मानव कल्याण की ओर ले जाता है। यही आत्म साक्षात्कार राष्ट्रीय जीवन का मुख्य ध्येय होता है। राष्ट्र को इस आत्म साक्षात्कार के मार्ग पर ले चलने वाला ही देशभक्त होता है केवल विदेशियों का विरोध करने वाला नहीं।

दीनदयालजी राष्ट्र की आत्मा के साक्षात्कार के महत्त्व को बताते हैं। आपके अनुसार तथाकथित आत्मसाक्षात्कार के अभाव में, अपनी चिति पर अन्य राष्ट्र की चिति का प्रभाव रहने के कारण, जनजीवन में उत्कर्ष के स्थान पर अपकर्ष की सम्भावना रहती है। साथ ही राष्ट्रजीवन नष्ट होने व अन्य राष्ट्र की पराधीनता का खतरा भी रहता है।

आज हमको रचनात्मक देशभक्ति की ओर विशेष दृष्टि देने की आवश्यकता है तथा अपनी जातीय जीवन की चिति को पहचान कर उसको प्राकृत संस्कारों द्वारा बलवती करने का प्रयत्न करें, इसी में हमारे राष्ट्र का चिरकल्याण है। इसी के द्वारा हम मानवता की सेवा करने में समर्थ हो सकेंगे और तभी सफल होगा, हमारा 'सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सवन्तु निरामया; सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मां कश्चिद् दु:खभाग्भवेत्' का चिराकांक्षित ध्येय।[10]

एकात्मवादी भारतीय संस्कृति

प्रकृति को ध्येय की सिद्धि के अनुकूल बनाना संस्कृति और उसके प्रतिकूल बनाना विकृति है। प्रकृति में जो भाव सृष्टि की धारणा तथा उसकको अधिक सुखमय एवं हितकर बनाने वाले हैं, उनको बढ़ावा देकर दूसरी प्रवृत्तियों की बाधा को रोकना ही संस्कृति है।

दीनदयाल उपाध्यायजी के अनुसार भारतीय संस्कृति का आधार, सम्पूर्ण जीवन व सम्पूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करना है। उसका दृष्टिकोण एकात्मवादी है। वह तोड़ने में नहीं, जोड़ने में विश्वास रखती है। एक विशेषज्ञ के लिए टुकड़ों में तोड़ना ठीक हो सकता है, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से यह उचित नहीं। यह पाश्चात्य संस्कृति का आधार है, हमारा नहीं।[11]

उपाध्याय जी के अनुसार, हम यह तो स्वीकार करते हैं कि जीवन में अनेकता अथवा विविधता है किंतु उसके मूल में निहित एकता को खोज निकालने का हमने सदैव प्रयत्न किया है यह प्रयत्न पूर्णतया वैज्ञानिक है। विज्ञानवेत्ता का प्रयत्न रहता है कि वह जगत में दिखने वाली अव्यवस्था में से व्यवस्था ढूंढ निकाले। उनके नियमों का पता लगाए तथा उसी के अनुसार व्यवहार के नियम बनाए। आज का संपूर्ण जगत चेतना का आविष्कार मात्र है।

धर्म के नियमों के अनुसार, जब प्रकृति का परिष्कार होता है तो उसे संस्कृति कहा जाता है। यह संस्कृति निश्चय ही मानव जीवन की धारणा और उसके उद्दातीकरण में समर्थ होगी। इस संस्कृति का आदर और लक्ष्य, सिद्धांत और आदर्श दोनों के पीछे जीवन की एकता और एकात्मता है।[12]

निष्कर्ष

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार, देश के प्रत्येक नागरिक को अपने देश को जागृत करने का कार्य करना है। हमें अपने प्राचीन के प्रति गौरव का भाव लेकर, वर्तमान का यथार्थवादी आकलन करते हुए और भविष्य की महत्त्वाकांक्षा लेकर कार्यों में जुट जाना चाहिए। हम भारतीयों को न तो किसी पुराने जमाने की प्रतिच्छाया बनना है, न ही रूस या अमेरिका के प्रतिकृति। देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद हमारी जिम्मेदारियां समाप्त नहीं हुई है, वरन बढ़ गई हैं। ऐसा संदेश आपके वक्तव्यों व आलेखों के माध्यम से हम भारतीयों के लिए दिया गया है।

विश्व का ज्ञान और आज तक की अपनी संपूर्ण परंपरा के आधार पर हम ऐसे भारत का निर्माण करेंगे, जो हमारे पूर्वजों की अपेक्षाओं के अनुरूप होगा। इसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ संपूर्ण मानव ही नहीं, अपितु सृष्टि के साथ एकात्मता का साक्षात्कार कर 'नर से नारायण' बनने में समर्थ हो सकेगा। यह हमारी संस्कृति का शाश्वत, दैवी और प्रवाहमान रूप है। एक दिशाहीन विश्वमानव के लिए यही हमारा दिग्दर्शन है।

संदर्भ सूची

1. दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वाङ्मय; डॉ. महेशचंद्र शर्मा, खण्ड 12; पृ.67

2. दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वाङ्मय; डॉ. महेशचंद्र शर्मा, खण्ड 1; पृ. 78, पृ.79

3. दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वाङ्मय; डॉ. महेशचंद्र शर्मा, खण्ड 1; पृ. 90

4. दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वाङ्मय; डॉ. महेशचंद्र शर्मा, खण्ड 1; पृ. 107

5. दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वाङ्मय; डॉ. महेशचंद्र शर्मा, खण्ड 1; पृ. 111

6. दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वाङ्मय; डॉ. महेशचंद्र शर्मा, खण्ड 1; पृ. 113

7. श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्वविवेचनी, जयदयाल गोयन्दका, पृष्ठ 141, पृष्ठ 144

8. दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वाङ्मय; डॉ. महेशचंद्र शर्मा, खण्ड 1; पृ. 113, पृ. 114

9. दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वाङ्मय; डॉ. महेशचंद्र शर्मा, खण्ड 1; पृ. 118

10. दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वाङ्मय; डॉ. महेशचंद्र शर्मा, खण्ड 1; पृ. 119

11. दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वाङ्मय; डॉ. महेशचंद्र शर्मा, खण्ड12; पृ. 53

12. दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वाङ्मय; डॉ. महेशचंद्र शर्मा, खण्ड12; पृ. 56, पृ.57

अध्यापिका एवं लेखिका

सी-26, रेलवे रोड, रुक्मिणी मोदी महिला इण्टर कॉलेज के सामने, मोदीनगर-201204, जिला-गाजियाबाद (उ.प्र.), भारत